खण्ड 5
जाति और राजनीति

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड 5 परिचय

भारत में, जाति एक महत्वपूर्ण कारक है जो राजनीति को आकार प्रदान करती है। न केवल जाति राजनीति को प्रभावित करती है बल्कि राजनीति भी जाति को प्रभावित करती है। जाति एवं राजनीति के बीच संबंधों को दो पहलुओं से देखा जा सकता हैः चुनावी और गैर-चुनावी। इकाई संख्या 4 में अपने पढ़ा होगा कि जाति किस प्रकार से मतदान व्यवहार का निर्णायक तत्व मानी जाती है। इस खण्ड दो इकाइयाँ है जो जाति संगठनों एवं राजनीतिकरण से संबंधित हैं। इकाई 11 जाति संगठनों एवं जाति गठनों के बारे में चर्चा करती है। जबकि इकाई 12 जातियों के राजनीतिकरण के मुद्दों को उठाती है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 11 जाति आधारित संगठन और राजनीतिक गठन*

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 भारत में जाति व्यवस्था को समझना

11.2 जाति आधारित संगठनों का उदय

11.3 जातिवादी संगठनों द्वारा उठाये गये मुद्दे

11.4 जातिगत गठबंधन (Caste Formations)

11.5 चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका

11.6 गैर-चुनावी राजनीति में भूमिका

11.7 सारांश

11.8 संदर्भ सूची

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप भारत में जाति व्यवस्था की अवधारणा एवं इससे जुड़े विभिन्न संगठनों के बारे में पढ़ेंगे। इस इकाई में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का भी उल्लेख होगा। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आय यह समझ सकेंगे :

- भारत में जाति व्यवस्था की व्याख्या;
- जाति आधारित संगठनों के उदय पर चर्चा;
- भारत में चुनावी एवं गैर-चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका का विश्लेषण करना।

11.1 भारत में जाति व्यवस्था को समझना

जाति को वंशानुगत अंतर्विवाही समूह में परिभाषित किया जा सकता है इसमें समान नाम, समान परंपरागत व्यवसाय, समान संस्कृति, गतिशीलता के मामने में कठोरता, पद की विशिष्टता के आधर पर सजातीय समुदाय बनता है। इस शब्द की उत्पत्ति स्पैनिष और पुर्तगीज के शब्द 'कास्टा' से हुई है, जिसका अर्थ है 'वंश' या 'नस्ल' या एक स्तरीकरण वाली व्यवस्था है। इसका अर्थ यह है कि किसी व्यक्ति का सामाजिक स्तर उसकी जाति जिसमें उसके जन्म लिया हो से निर्धारित होता है।

भारतीय जाति व्यवस्था को चार स्तरीय वर्ण व्यवस्था में वर्गीकृत किया गया है। वर्ण व्यवस्था ब्राह्मण में सबसे ऊपर है, ये पुजारी एवं विद्धान माने जाते थे। इसके नीचे क्षत्रिय हैं, जो कि शासक या सैनिक होते थे। उसके नीचे वैष्य आते हैं, जिसे हम बनिया या व्यापारी भी कहते है। सबसे नीचे शूद्र होते हैं जो मुख्य रूप से मजदूर, किसान, कामगार, और नौकर होते हैं। शुद्रों को वर्ण व्यवस्था के बाहर अछूत वर्ग होते थे जिनको वर्ण व्यवस्था से बाहर रखा गया था। भी माना जाता है। सभी वर्णों में अनेक जातियाँ और जाति एवं उप-जाति होती है।

*डॉ. अंकिता दत्ता, रिसर्च फैलो, आई.सी.डब्लू.ए., नई दिल्ली

भारत में जाति व्यवस्था में स्वतंत्रता के बाद एवं 19वीं सदी के बीच काफी बदलाव हुए हैं क्योंकि इस दौरान कई सामाजिक धार्मिक एवं विरोध आन्दोलन हुए थे। इन आन्दोलनों ने जनता के जाति व्यवस्था के दृष्टिकोण को परिवर्तिति किया। इन आंदोलनों में सबसे प्रमुख थे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिषन एवं थियोसोफिकल सोसाइटी आंदोलन। विरोध आंदोलनों में ज्योति फूले का सत्य शोधक समाज आंदोलन (पूना), गैर-ब्राह्मण आंदोलन रामास्वामी नायकर, जिसे हम पेरियार के रूप में भी जानते थे, (मद्रास), तथा अस्पृश्यता के खिलाफ चलाया गया आंदोलन जिसका नेतृत्व डा. बी. आर. अंबेडकर एवं महात्मा गाँधी ने किया प्रमुख हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, शहरीकरण, उद्योगीकरण, शिक्षा के प्रसार, सामाजिक-धार्मिक सुधार, पश्चिमीकरण इत्यादि ने भी जाति व्यवस्था के परिवर्तन में योगदान दिया। इसके अलावा, संविधानिक प्रावधान जैसे मूल अधिकार (अनु. 14,15 16 एवं 17), तथा नीति निर्देशक सिद्धांतों ने जाति के सुधार में बड़ी भूमिका रही है। विशेषकर शिक्षा ने लोगों को उदार, तार्किक, लोकतांत्रिक एवं व्यापक समझ का बनाया। इन सब कारकों ने जाति व्यवस्था से संबंधित कानूनों को सुगम बनाया परिणाम स्वरूप विभिन्न जातियों में ऊपर उठकर संबंध तथा सहयोग बढ़ा। अब जाति व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाध ाक नहीं है, व्यक्ति के व्यवसायिक कैरियर में अब जाति व्यवधान नहीं है। समकालीन समय में अंतर-जातीय सामाजिक संबंधों में भी काफी बढ़ोतरी हुई है।

11.2 जाति आधारित संगठनों का उदय

जाति एवं लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था एक दूसरे के विरोधी मूल्यों के प्रतीक हैं। जाति स्तरीकरण पर आधारित है जिसमें व्यक्ति की पहचान उसकी जाति से होती है जिसमें उसने जन्म लिया हो। जबकि दूसरी तरफ लोकतांत्रिक व्यवस्था व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं समानता का समर्थन करती हैं, तथा इसमें कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है। संविधान के अनुसार भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं का उदय हुआ, इसने भारतीय समाज को काफी परिवर्तित किया है। इसने राजनीति की प्रकृति को भी बदला है। रजनी कोठारी ने अपनी किताब, ''कॉस्ट इन इंडियन पालिटिक्स'' में यह दलील दी कि भारत में जाति का राजनीतिकरण हो रहा है। जाति एवं राजनीति के बीच संबंध स्थापित हो गये है जिसने दोनों को बदल दिया है। इसके परिणामस्वरूप जाति का निरपेक्षीकरण हो रहा है। जाति का निरपेक्षीकरण का अथ है जाति अपनी परंपरागत भूमिका से हटकर नयी भूमिका में आ गयी है। इसके सिद्धांत अब बदल चुके है। इसने जातियों की धर्मनिरपेक्ष हितों की तरफ जाति को एकत्रित किया है। इससे जातियों के शासन सत्ता एवं रोजगार जैसे मुद्दों पर लामबंदी को बल मिला है। जाति के निरपेक्षीकरण से अंतर्राजातीय समझौतों और गठबंधनों के गठन में मदद मिली है।

जाति अब नयी भूमिका में आ गयी है। अब जातियों के आधार पर संगठनों का गठन हो रहा है। ये संगठन अपनी जातियों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों को उठा रहे हैं। अब जातिगत संगठन सरकार को अपनी माँग पूरी करने को विवष कर रहे हैः जैसे, उनकी माँगें हैं शैक्षिक सुविधाऐं, भूमिका बंटवारा एवं मालिकाना, सरकारी नौकरियाँ, इत्यादि। वे अपनी माँगों को पूरा करने के लिए जन सभा करते हैं तथा सरकार को ज्ञापन देते हैं।

जातियाँ संगठन बनाकर जातियां अपने हितों को व्यक्त करते हैं। जातिवादी संगठन दो प्रकार के होते हैंः एक, जो संगठन विशेष जातियों से बने हैं, तथा दूसरा, विभिन्न जातियों के गठबंधन द्वारा बनाये गये संगठन, जिन्हें संघ कहा जाता है। अपने-अपने हितों को पूरा करने के लिये बनाए जाते हैं, चाहे शिक्षा की सुविधाऐं हों, भूमि पर मालिकाना हक हों, सरकारी नौकरियों इत्यादि के लिए एवं सामाजिक उत्थान के लिए। जातियों के संगठनों की

उत्पत्ति स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व हुई। प्रारंभिक स्तर पर, जातिवादी संगठनों का मुख्य संबंध कमजोर वर्गों का प्रतिनिधित्व करना एवं उनकी आवाज बनना था। लेकिन उदारवादी लोकतंत्र एवं वयस्क मताधिकार में विस्तार के बाद उनकी माँग भी बढ़ने लगी, विशेषकर प्रशासन, शिक्षा एवं राजनीति में अपना प्रतिनिधित्व की माँगें। रूडोल्फ एण्ड रूडोल्फ ने भी जातिवादी संगठनों की भूमिका की समीक्षा इस प्रकार की है :- ''जातिवादी संगठनों का प्रयास था कि उनके सदस्यों का निर्वाचित कार्यालयों में चयन हो या राजनीतिक दलों के राजनीतिक दलों की गतिविधियों या अपने संगठन बने। वे ये प्रयत्न करते हैं कि, राज्य मंत्रीमंडल में उनका प्रतिनिधित्व बढ़े और प्रशासनिक मषीनरी पर दबाव बनाकर अपनी जाति के उद्देश्यों को पूरा करते हैं। विशेषकर, कल्याणकारी, शैक्षिक एवं आर्थिक क्षेत्र में। जातिवादी संगठनों का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि, उन्होंने अशिक्षित जनता को राजनीतिक तौर पर संगठित किया जिससे उन्हें राजनीतिक लोकतंत्र के मूल्यों एवं उनकी अपेक्षाओं को पूरा करने में मदद मिली''। इस रणनीति से उनकी स्थिति मजबूत हुई तथा उनकी माँगों को राजनीतिक व्यवस्था द्वारा पूरा करने एवं स्वीकार करने को मजबूर होना पड़ा।

जाति की प्रकृति में बदलाव का प्रमुख कारण है जाति एवं राजनीतिक संस्थाओं के बीच वार्तालाप का होना। रजनी कोठारी ने जाति एवं राजनीती के बीच तीन महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर जोर दिया। प्रथम बिन्दु है जाति का राजनीतिक भागीदारी के द्वारा धर्मनिरपेक्षीकरण इसने परंपरागत जाति के कठोर लक्षणों को तोड़ा, परंपरागत सामाजिक व्यवस्था को बदलने में योगदान दिया। इससे विभिन्न जातियों को एक दूसरे के साथ संलग्न होने तथा सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया को भी बढ़ावा मिला। दूसरा बिन्दु एकीकरण आयाम से संबंधित है। जाति व्यवस्था न केवल व्यक्तियों को अपनी जाति के आधार पर अलग करता है बल्कि उन्हें व्यवसाय एवं आर्थिक पहलू पर भी अलग करता है। इसी के साथ-साथ जाति व्यवस्था का आंतरिक ढ़ाँचा भी है जिसमें छोटे समूह कार्य करते है। तीसरा बिन्दु चेतना से संबंधित है जहाँ जाति का राजनीति में प्रवेश चेतना के आधार पर होता है और इस प्रकार जाति का राजनीतिकरण हो जाता है। वोट के अधिकार ने भी दलितों के अंदर चेतना का भाव पैदा किया है तथा आरक्षण ने इन समुदाय को और अधिक मजबूत बनाया है। इस प्रकार जाति संगठनों एवं राजनीतिक दलों के बीच बातचीत का परिणाम को तीन नतीजों से लगाया जा सकता है :- पहला, जाति सदस्य विशेषकर गरीब एवं शोषित वर्ग जो सदियों से अछूत माने जाते थे, उन्हें राजनीतिक लाभ मिला तथा वे चुनावी राजनीति में हिस्सा भी लेने लगे ताकि उनका हित पूरा हो सके। दूसरा, जातिगत सदस्य कई राजनीतिक दलों में बंट जाते हैं। जिससे जाति बहुत कमजोर हो गई। तथा तीसरा, संख्या के तौर पर अधिक से अधिक जातियों को निर्णय-निर्माण संस्थाओं में प्रतिनिधित्व मिला और इसने परंपरागत रूप से प्रभावसाली जातियों के वर्चस्व को कमजोर किया।

सामान्यतौर पर जातिवादी संगठन राजनीतिक दलों से जुड़े हुए होते हैं। प्रायः जातियों एवं दलों के कार्यक्रम एवं गतिविधि आपस में जुड़े हुए होते हैं। चुनाव के समय जातिवादी संगठन सम्मेलन एवं पंचायत करते हैं, ताकि वे यह निर्णय कर सके कि वो किस पार्टी को वोट या समर्थन देंगे। सामान्यतया, वे उस पार्टी का समर्थन करते हैं जो उनके मुद्दों को उठाये जिनमें आम मुद्दों के साथ-साथ जाति विशेष के मुद्दे भी शामिल हैं। इसके तीन परिणाम हुएः- एक, इससे विभिन्न जातियों की राजनीतिक भागीदारी बढ़ती है; दो, इससे विभिन्न पार्टियों के बीच जातियों का समर्थन भी बंटा है और जाति की कठोरता को दूर किया है; और तीन, संख्यात्मक रूप से प्रभावशाली जातियों, दलितों एवं पिछड़ों को उच्च जातियों की तुलना में निर्णय प्रक्रिया में ज्यादा प्रतिनिधित्व मिला। इसने बड़ी जातियों के वर्चस्व को कमजोर किया गया है और इससे समावेश को बढ़ावा मिला है।

अभ्यास प्रश्न 1

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) जाति पर सामाजिक एवं धार्मिक आंदोलनों के प्रभाव की चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) जाति-आधारित संगठनों के उदय की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

11.3 जाति संगठनों द्वारा उठाये गये मुद्दे

जाति संगठनों द्वारा उठाये गये मुद्दों में प्रमुख - आत्म-सम्मान, गौरव, मानव अधिकार, न्याय, संसाधनों का बंटवारा, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, और जाति के अंदर आंतरिक समस्याऐं इत्यादि होते हैं। दलित एवं अन्य-पिछड़े वर्ग के संगठन वर्तमान में जारी आरक्षण को सही मानते हैं तथा वे इस निजि क्षेत्र में भी लागू करने की माँग कर रहे हैं। कुछ उच्च जातीय संगठन भी उच्च जातियों के लिए आरक्षण की माँग करते हैं। इसके जवाब में अभी हाल ही में 124वां संविधान में संशोधन करके आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की गई है जिसमें उच्च जातियाँ भी शामिल है। रूडोल्फ एण्ड रूडोल्फ के अनुसार जाति संगठन जातियों को सशक्त बनाने में अपनी लोकतांत्रिक भूमिका निभा रहे हैं। यद्यपि, सभी जातियों ने अपने संगठन बना लिये हैं, लेकिन दलित एवं पिछड़े वर्गों के संगठन अपने वर्गों को सशक्त बनाने में अपनी भूमिका अधिक निभा रहे हैं। ये संगठन न केवल आंतरिक मतभेद एवं विवादों को सुलझाते हैं बल्कि, चुनावों में भी भागीदारी के लिए लोगों को संगठित करते हैं। कई प्रकार के मुद्दों को वे उठाते हैं जैसे, आत्म-सम्मान, जाति-आधारित हिंसा, उत्पीड़न, शारीरिक प्रताड़ना तथा मानव अधिकार जैसे मुद्दे भी शामिल हैं। इसके अलावा भी मुद्दे है जैसे आरक्षण, छूआछूत इत्यादि। ये सभी मानव अधिकार से जुड़े मुद्दे है क्योंकि यू.एन. मानव अधिकार की परिभाषा के अनुसार वे सभी अधिकार जो कि व्यक्ति से जुड़े हुए हों, मानव अधिकार की श्रेणी में आते हैं। जातिगत संगठन अपनी जाति के सदस्य जिन्होंने परीक्षा में उच्च स्थान प्राप्त किया था खेल एवं अन्य गतिविधि में नाम कमाया है उनको सम्मानित करते हैं। ये संगठन इनके सम्मान में समारोह भी आयोजित करते हैं कई संगठन डा. अम्बेडकर के नाम पर भी बनाये गये है जिनका

मकसद डा. अम्बेडकर के विचारों को प्रसारित करना तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा देना है।

11.4 जातिवादी गठबंधन (Caste Formations)

जाति की प्रकृति में बदलाव जाति के परंपरागत रीति-रिवाजों में परिवर्तन जिसे हम धर्मनिरपेक्षीकरण के रूप में जानते हैं, इसने विभिन्न जातियों के बीच राजनीतिक गठबंधन को संभव बना दिया था। इन गठबंधनों को हम जातिवादी गठबंधन भी कह सकते हैं। जिन जातियों ने ऐसे गठबंधन किये हैं, वे विभिन्न सामाजिक श्रेणियों से संबंधित है। लेकिन उनका सामान्य हित (विशेषकर दलितों एवं अन्य पिछड़े वर्गों के), राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी, आर्थिक अवसर या सामाजिक न्याय, उनको अपने जातिगत संगठन बनाने में हौंसला बढ़ाते हैं। जैसा कि अपने पढ़ा होगा, जातिवादी संगठन दो प्रकार के होते हैं, एकल जाति संगठन, या दूसरा विभिन्न जातियों को मिलाकर बनाए गए संगठन या संघ। लेकिन जातिगत गठबंधन हमेशा जातिय संगठनों से नहीं बनाया जाते हैं। उन्हें बिना जातीय संगठनों के भी बनाया जा सकता है। ये गठबंधन प्रायः चुनावी राजनीति के संदर्भ में बनाये जाते हैं। चुनाव जीतने के मकसद से ऐसे गठबंधन बनाये जाते हैं। यहाँ यह जानना जरूरी है कि राजनीतिक पार्टियों विभिन्न जातियों का समर्थन प्राप्त करने के लिये जातिवादी संगठनों को बनाने को प्रेरित करते हैं। शैक्षिक एवं लोकप्रिय संदर्भ में, जातिवादी संगठन जातियों के प्रथम नामों से बनाए जाते हैं, जो इन गठबंधनों के भाग होते हैं। स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जाति संगठनों ने भारत में राजनीति को बहुत प्रभावित किया। यहाँ कुछ ऐसे उदाहरण है जो कि जातिवादी संगठनों से संबंधित है। स्वतंत्रता पूर्व दो जातिवादी संगठनों के उदाहरण मिलते हैं। प्रथम, बिहार में 1930 में बनाया गया त्रिवेणी संघ तथा दूसरा अजगर (AJGAR) अंग्रेजी के प्रथम में जातियों के प्रथम अक्षरों से बनाया गया हैः A-अहीर, J-जाट, G-गुर्जर, R-राजपूत से मिलकर बनाया गया संगठन है। इसे पंजाब के किसान नेता छोटूराम ने प्रस्तावित किया था। यद्यपि ये सभी जातियाँ, मध्यम अथवा उच्च वर्ग से संबंध रखती है परंतु इनकी समस्याएं समान हैं और इनक समानताओं के कारण उन्होंने अपने गठबंधन बनाए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1960-1970 के दशक में फिर से अजगर (AJGAR) नाम से एक संगठन बनाया था। इन जातियों को संगठित करके चरण सिंह ने भारतीय क्रांति दल (बी.के.डी) बनाया जिसने कॉंग्रेस पार्टी को उत्तर भारत में कड़ी चुनौती पेश की। इस गठबंधन ने चरण सिंह के 1967 में उत्तर प्रदेश में प्रथम गैर-कॉंग्रेसी मुख्यमंत्री बनने में योगदान दिया।

इन सबमें सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण है बामसेफ का एवं DS4 का। बामसेफ का अर्थ है बैकवर्ड एण्ड माइनोरिटी क्लासेज एम्पलायीज फेडरेशन (पिछड़े एवं अल्पसंख्यक वर्गों के कर्मचारियों का संघ)। इसी प्रकार DS4 का मतलब है, दलित, शोषित, समाज संघर्ष समिति (S4 माने अंग्रेजी अक्षर S से चार बार प्रयोग)। इन दोनों संगठनों का गठन काशीराम ने किया था। बामसेफ का गठन 1978 में हुआ था। बामसेफ में अन्य जाति के कर्मचारियों को शामिल करने के लिये इसका दायरा बढ़ाया गया। अंबेडकर के विचारों के आधार पर DS4 ने एक प्रकाशन शुरू किया। इसका नाम था ''आप्रेस्ड इंडियन''। इस पत्रिका के माध्यम से काशीराम ने एक कैंपेन चलाया जिसमें डा. अम्बेडकर के मैसेज शोषित वर्गों के लिए दिये गये थे। इनमें आत्म-सम्मान प्राप्त करने के लिए तथा सामाजिक समानता प्राप्त करने के लिये ''शिक्षित बनो, संगठित रहो तथा संघर्ष करो'' का नारा दिया। 1984 में काशीराम ने एक राजनीतिक दल का गठन किया, जिसका नाम था बी. एस. पी. (बहुजन समाज पार्टी)। बी.एस.पी. उत्तर भारत में एक मजबूत पार्टी बनकर उभरी विशेषकर उत्तर प्रदेश में जहाँ इसकी नेता मायावती वहाँ की चार बार मुख्यमंत्री भी बनी। वास्तव में जाति का उदय एक

सतत प्रक्रिया है, समय के अनुसार नये गठबंधन बनते हैं तथा पुराने गायब हो जाते हैं। तथा फिर से नए गठबंधन पैदा हो जाते हैं।

11.5 चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका

भारतीय राजनीति में जाति सबसे महत्वपूर्ण कारक बन गयी है। जाति चेतना एवं जातिगत संगठनों के उदय ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को बदल दिया है। सार्वभौम वयस्क मताधिकार के लागू होने के बाद सभी वर्गों की राजनीति में भागीदारी बढ़ी है तथा ये वर्ग बहुत मजबूत ताकत बनकर उभरे हैं। जैसा कि आप इकाई 12 में पढ़ेंगे, जाति एवं राजनीति का अंर्तसंबंध है। इस संदर्भ में, हमें यह समझने की जरूरत है कि भारत की चुनावी राजनीति में जाति के दो पहलू हैंः पहला, जाति के आधार पर प्रतिनिधी चुने जाते है, या जाति के आधार राजनीतिक दल टिकटों का बंटवारा करते हैं, तथा दूसरा पहलू यह है कि राजनीतिक दलों का आधार, जातियों का समर्थन होता है। प्रथम पहलू यह दर्शाता है जबकि दूसरा यह दर्शाता है कि चुनावी सफलता में जातियों की भूमिका अधिक बढ़ गयी है। प्रथम पहलू यह दर्शाता है कि जातियों को विधायी निकायों में शामिल किया जा रहा है जबकि दूसरा यह है कि चुनावी सफलता में जातियों की भूमिका अधिक बढ़ गयी है। दूसरे पहलू में हम इस तरह भी समझ सकते हैं कि अब जातियों को रोजगार, स्वास्थ्य शिक्षा, एवं शासन में अधिक महत्व दिया जा रहा है। इन सब पहलुओं के आधार पर यह कह सकते हैं कि जाति राजनीति का प्रमुख कारक बन गयी है। हालांकि, अन्य कारक भी राजनीति को प्रभावित करते हैं लेकिन जाति इनमें से एक है। वास्तव में कुछ राजनीतिक दलों के समर्थन का आधार ही जाति बन गयी है। उदाहरण के तौर पर बहुजन समाज पार्टी का दलित वर्ग सबसे प्रमुख समर्थन का आधार है। 1980 तक कॉंग्रेस पार्टी का आधार भी दलित वर्ग ही प्रमुख था, इसके अलावा पिछड़े वर्ग एवं उच्च जातियाँ भी इसमें थी। पॉल ब्रास ने इसे ''जातियों का महागठबंधन'' कहा था। इन रणनीतियों के आधार पर विभिन्न राजनीतिक दल चुनाव लड़ने के लिये जातियों के आधार पर टिकट तय करती है। यहाँ तक कि वोट देने वाले भी जाति के आधार पर ही वोट डालते हैं। कई शोध कार्यों से यह पता चलता है कि जातियों ने राजनीति में भागीदारी के कारण लोगों को मजबूत किया है खासकर जो वर्ग पिछड़े हैं उनको अधिक सशक्त बनाया है। इन अध्ययनों में शामिल है, जैफरलों एवं कुमार (सं.) की पुस्तक (2011) 'राइज ऑफ प्लेनियन्स'? जिसके अनुसार भारतीय विधान सभाओं का चरित्र अब पूरी तरह बदल गया है। इसका चरित्र यह दर्शाता है कि स्वतंत्रता प्राती के बाद दलितों, पिछड़े वर्गों तथा कमजोर वर्गों का प्रतिनिधित्व इन निकायों में बढ़ा है। अपनी पुस्तक ''हू वांटस् डेमोक्रेसी''? में जावेद आलम यह सुझाव देते हैं कि, निम्न जातियाँ जाति को अपने सशस्तीकरण के लिये एक महत्वपूर्ण औजार मानती है। प्रताप भानू मेहता ने ''बर्डन ऑफ डेमोक्रेसी'' में यह दलील दी कि, लोकतंत्र ने अशिक्षित तथा गरीब लोगों के लिए अवसर प्रदान किए। और प्रतिनिधित्व परन्तु असमानताओं के कारण एवं उत्तरदायित्व के बीच काफी अंतर है। राज्य की ओर माँग अधिक बढ़ रही है, इससे राज्य की तरफ लोगों का गुस्सा अधिक है एवं शासन के सिद्धांत पूरी तरह बिखर गये है या टूट गये है। योगेन्द्र यादव ने लोकतांत्रिक उथल-पुथल के संदर्भ में विभिन्न सामाजिक समूहों की बदलती भागीदारी का अवलोकन किया। वे इस उथल-पुथल को दो चरणों में विभाजित करते हैंः- प्रथम लोकतांत्रिक उठान, इसमें 1960 से 1970 के दशक में पिछड़े वर्ग उभर कर सामने आये जबकि दूसरा लोकतांत्रिक उठान जब दलितों की भागेदारी बढ़ी। इसका प्रमुख कारण जातिगत संगठनों की प्रभावी भूमिका रही है।

इस संदर्भ में, रजनी कोठारी का यह मानना है कि 'राजनीति में जातिवाद' जाति के राजनीतिकरण से ना कम है या ज्यादा है। अन्य शब्दों में, राजनीति पर जाति का प्रभाव

अधिक नहीं पड़ा है बल्कि जाति का राजनीतिकरण हुआ है। जाति भारत में सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का महत्वपूर्ण पहलू है। सामाजिक संस्था के रूप में, यह वृहत मजबूती के साथ खड़ी है और आधुनिकीकरण के युग में भी जाति अभी विद्यमान है। यद्यपि जाति के अंदर बहुत परिवर्तन आ गया है फिर भी यह राजनीति एवं राजनीतिक दलों के साथ पूरी तरह से घुल मिल गयी है एवं कोई भी राजनीतिक दल इसकी अनदेखी नहीं कर सकता।

11.6 गैर चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका

जाति व्यवस्था बदली परिस्थितियों में अपनी भूमिका को नये सिरे से व्यवस्थित करने का प्रयास कर रही है। औद्यौगीकरण, शहरीकरण, सामाजिक-धार्मिक सुधार, व्यावसायिक गतिशीलता, बाजारी अर्थव्यवस्था में वृद्धि का जाति व्यवस्था पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। इन कारकों के प्रभाव के कारण हमें जाति में आये परिवर्तन को भी समझना पड़ेगा। जैसा कि हम चर्चा कर चुके हैं, जाति ने देश की राजनीति में जबरदस्त भूमिका निभाई है, तथा यह भी सत्य है कि जाति ने गैर-चुनावी क्षेत्र में भूमिका निभाई है।

यह अपेक्षा की जाती है कि शिक्षा के प्रसार से लोग उदार, तर्कशील एवं विस्तृत सोच के बनेंगे। इसी प्रकार भारत में साक्षरता दर में वृद्धि ने लोगों की सोच में परिवर्तन आएगा। इसके कारण जातिवाद एवं जाति की मानसिकता में भी परिवर्तन आएगा। लेकिन साक्षरता में वृद्धि से जातियों में चेतना का भी विकास हुआ है। इससे सभी जातियाँ अपने हितों की रक्षा करना चाहती है। इसी के आधार पर जातियाँ संगठित हो रही है एवं संघ एवं दबाव समूह बना रही है। ये समूह मुख्य रूप से शिक्षा के मुद्दे, स्वास्थ्य एवं धार्मिक मुद्दों को उठाते हैं। ये संगठन हॉस्टल एवं हास्पीटल, स्कूल एवं कॉलेज, धर्मशाला और मंदिर भी चलाते है। ये जातिवादी संगठन अपने सदस्यों को नेतृत्व दिलाने के लिए भी प्रयत्न करते हैं और उन्हें अपनी जाति का प्रवक्ता भी बनाते हैं। जाति संगठन अपने सदस्यों के प्रति वफादारी निभाते हैं और उनकी जातिगत पहचान को मजबूत बनाते हैं।

यद्यपि, जाति पंचायतों की भूमिका में कमी हो रही हैं परन्तु जाति संगठन बढ़ रहे हैं। इनमें से कुछ संगठनों का अपना लिखित संविधान भी है तथा प्रबंध समिति भी है जिससे वे जाति के विषय एवं प्रथा को बनाये रखते है। कुछ जाति संगठनों के अपने अखबार, समाचार बुलेटिन, पत्रिकाऐं, इत्यादि भी होते हैं, जिनके माध्यम से अपने सदस्यों को संगठन की गतिविधियों एवं कार्यक्रमों की जानकारी देते हैं। जातियों के बीच एकता या एकीकरण करने के कई प्रयास किये गये हैं इनमें जाति आधारित ट्रस्टों की स्थापना या इकाई भी शामिल है। ये ट्रस्ट वार्षिक सम्मेलन, मिलन समारोह, वार्षिक डिनर, या त्यौहारों का भी आयोजन करते हैं। ये गरीब बच्चों को छात्रवृत्तियों भी प्रदान कराते हैं। इनमें कुछ ट्रस्ट अपने स्कूल, कॉलेज, हॉस्टल, इत्यादि भी चलाते हैं। ये संगठन अपने सदस्यों की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए सामूहिक क्रेडिट सोसाइटी एवं औद्यौगिक सोसाइटी भी स्थापित करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

नोटः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) जातिवादी संगठनों के उठाए मुद्दे क्या होते हैं?

.....

.....

.....

2 भारत में चुनावी राजनीति एवं गैर चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

11.7 सारांश

जाति, भारतीय राजनीति में जोड़ने वाली एवं बाँटने वाले दोनों कारकों की तरह कार्य करती है। यह विभिन्न हित समूहों के उदय का कारण बन गयी है जो सत्ता एवं पहचान के लिए संघर्ष करते हैं। इस जाति चेतना ने भारतीय राजनीति में नयी प्रवृत्ति को जन्म दिया है जिसमें पुराने जाति गठबंधन टूट रहे हैं एवं नये गठबंधन बनकर उभर रहे हैं। आधुनिक राजनीति के प्रभाव के अंतर्गत जातिवादी संगठन राजनीतिक लामबंदी का मुख्य आधार बन चुके हैं। ये राजनीतिक सत्ता हासिल करने, सामाजिक हैसियत, एवं आर्थिक स्थिति मजबूत करने के इरादे से उभर कर सामने आये हैं। जो जाति समूह, जिन्हें निम्न समझा जाता था, अब वे संगठित होकर अपनी माँगों के लिये दबाव बना रहे है। अपने आत्म विश्वास तथा स्तर में वृद्धि एवं साख में वृद्धि के कारण, ये राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं एवं अपनी स्थिति या पहचान मजबूत कर रहे हैं। इस प्रकार राजनीति जाति के लिये एवं जाति राजनीति के लिए महत्वपूर्ण बन गयी है।

11.8 संदर्भ सूची

बेली, सुसान (1999), ''द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडियाः कास्ट, सोसाईटी एण्ड पोलिटिक्स इन इंडिया फोम दि एंटिनथ सेंचूरी टू द मॉर्डन एज'', कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

गुप्ता, दीपांकर (2000), ''इंटेरोगेटिंग कास्ट'', नई दिल्ली. पेंग्युविन।

जैफेरले, क्रिस्टोफर (2003), ''इंडिया'स साइलेंट ऐव्ल्यूशनः द राइज ऑफ द लो कास्टस इन नॉर्थ इंडियन पोलिटिक्स'', परमानेंट, रानीखेत, ब्लैक।

ऑमवेअ, गेल (1994), ''काशीराम एण्ड बहुजन समाज पार्टी'', के. एल. शर्मा (सं.) में, ''कास्ट एंड क्लास इन इंडिया, रावत जयपुर, प्रकाशक।

पई, सुधा (2002), दलित एर्ससन एण्ड अफिनिबूड़ डैमोक्रेटिक रेवोल्यूशन इन उत्तर प्रदेश, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेषन।

प्रताप भानु मेहता (2003), ''द वर्डन ऑफ डेमोक्रेसी'', नई दिल्ली, पेंग्युविज।

रजनी कोठारी (1970), कास्ट इन इंडियन पोलिटिक्स; ओरियंट हैदराबाद, लोंगमेन।

रूडोल्फ, ल्योड एंड सुसैन रूडोल्फ (2012), ''द पोलिटिकल रोल ऑफ इंडिया'स कास्ट असोसिएशन'', पैसिफ्कि अफेयर्स, 85 (2): 335-353.

सोनालडे देसाई एंड अमरेष दूबे (2011), ''कास्ट इन 21 सेन्चूरी इंडियाः कमपीटींग नैरेट्विस'', ई. पी. डब्ल्यू., 46 (11): 40-49।

शाह, ए., एस (2007), ''कास्ट इन द 21 सेन्चूरीः फोंम सिस्टम ऐलिमेंटस'', ई. पी. डब्ल्यू, 42 (44): 109-116।

शाह, घनस्याम (सं.) (2004), ''कास्ट एण्ड डैमोक्रेटिक पालिटिक्स इन इंडिया'', न्यू डेल्ही, परमानेंट ब्लैक।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों लोगों के जाति के प्रति व्यवहार में परिवर्तन लाया। इन्होंने जातियों को समानता, स्वतत्रंता तथा सामाजिक उत्थान की महत्ता की चेतना को पैदा किया।

2) जातिय संगठन जातियों के अधिकारों को लामबंद करने के उद्देश्य से उभरे। इन्होंने जातियों का राजनीतिकरण तथा समाज का प्रजातांत्रिकरण हुआ। जाति संगठन एक जातिय एवं अनेक जातियों के गठबंधनों के रूप में सक्रिय होते हैं।

अभ्यास प्रश्न–2

1) इन मुद्दों में शामिल हैंः जातियों को आर्थिक अवसरों को प्रदान कराना तथा उन्हें, राजनीतिक प्रतिनित्व तथा सामाजिक समानता दिलाना।

2) चुनावी राजनीति में जातियाँ राजनीतिक दलों के समर्थन तथा गैर-चुनावी राजनीति में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा धार्मिक मुद्दों को उठाने वाली एंजेसी के रूप में काम करते है।

इकाई 12 जाति और राजनीति*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 जाति एवं राजनीतिः क्षेत्र

12.3 जाति आधारित राजनीति के मुद्देः उदाहरण

12.3.1 आरक्षण

12.3.2 हिंसा

12.3.3 जाति प्रतीक और राजनीति

12.4 जाति और चुनावी राजनीति

12.5 सारांश

12.6 संदर्भ

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

आपने इकाई संख्या 11 में जातिवादी संगठनों और जातिगत गठनों के बारे में पढ़ा होगा। इस इकाई में आप जाति एवं राजनीति के संबंधों के बारे में पढ़ोंगे कि किस तरह ये चुनावी और गैर चुनावी राजनीति में एक-दूसरे से आपस में मेल जोल रखती है। इस इकाई के अध्ययनों के पश्चात् आप यह समझ सकेंगे :

- जाति और राजनीति के क्षेत्र को समझना;
- चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका की व्याख्या करना; तथा
- जाति और लोकतंत्र के बीच संबंध स्थापित करना।

12.1 प्रस्तावना

जाति राजनीति में निर्णायक भूमिका निभाती है। इसका प्रमाण कई प्रकार के अध्ययनों में भी मिलता है जो भारत में जाति एवं राजनीति के बीच संबंधों पर किये गये है। राजनीतिक दल एवं जातिवादी संगठन लोगों को जाति के नाम पर एकत्रित करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारतीय राजनीति में कई महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिले हैं। परिवर्तनों ने भारत में राजनीति एवं जाति के चरित्र पर प्रभाव डाला है। जाति की भूमिका काफी विस्तृत हुई है इसकी परंपरागत भूमिका बदल गई है। जाति के चरित्र में परिवर्तन राज्य की नीतियों के कारण हुआ है इनमें भूमि सुधार कल्याणकारी नीतियाँ, सार्वजनिक संस्थाओं में आरक्षण एवं ढ़ाँचागत विकास जैसी नीतियाँ शामिल है। विगत कई वर्षों से भारतीय राजनीति में दलितों एवं अन्य पिछड़े वर्गों की उपस्थिती महत्वपूर्ण रही है। यह स्वतंत्रता के प्रांराभिक वर्षों से भिन्न है जब केवल अन्य जाति और प्रभावी मध्य जाति जातियों का ही देश की राजनीति में प्रभुत्व था। जाति और राजनीति के बीच संबंध है। इस संबंध में न केवल राजनीति जाति को प्रभावित करता है। बल्कि, जाति भी राजनीति पर असर डालती है।

*डॉ. दिव्या रानी, कंसलटेंट, राजनीति विज्ञान संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

राजनीति में जाति के महत्व का इस तथ्य से पता चलता है कि देश के अनेक राज्यों में कई राजनीतिक दलों की पहचान जातियों से है। चूंकि आपने इकाई संख्या 11 में जाति संगठनों की भूमिका का अध्ययन किया है, इसलिये यह इकाई आमतौर पर जाति समूहों के लाभबंद में राजनीतिक दलों की भूमिका पर ध्यान केंद्रित करेगी।

12.2 जाति और राजनीतिः क्षेत्र

जाति और राजनीति का दायरा विभिन्न जातियों और संस्थानों से संबंधित विभिन्न मुद्दों को शामिल करता है। इन संस्थानों में जाति संगठन एवं राजनीतिक दल भी शामिल हैं। जातिय राजनीतिक के मुख्य मुद्दे हैं, जातियों के अधीन रहने और प्रभुत्व के संबंध, जाति, धर्म आधारित हिंसा, नौकरियों के लिये सार्वजनिक संस्थाओं में आरक्षण, सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यता, आत्मसमान, मानवाधिकार, सामाजिक न्याय आदि। जातियों में प्रतिस्पर्धा वास्तम में राजनीतिक दलों में प्रतिस्पर्धा और राजनैतिक संघर्ष तथा सत्ता प्राप्त करने के लिये जातियों के बीच प्रतिस्पर्धा का रूप धारण कर लेती है। राजनीतिक दलों के द्वारा चुनाव जीतने के लिये जातियों को एकजुट करने की राजनीति की जाती है। संस्थाओं की नीतियों में प्रतिनिधियों के माध्यम से अधिकार का हिस्सा जातियों के सशक्तिकरण का कारण हो सकता है, खासकर विधान सभा और लोक सभा या स्थानीय संस्थाओं में। जातियों का सशक्तिकरण उनके लिये बनाई गयी कल्याणकारी नीतियों के माध्यम से भी हो सकता है। इस प्रकार राजनीति और जाति के बीच संबंध जातियों के सांझे होने से होता है। मोटे तौर पर जाति और राजनीति के क्षेत्र में निर्वाचक और गैर चुनावी राजनीति में विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा जातियों को लामबंद करना शामिल है। जैसा कि ज्ञात है भारत पर राजनीतिक ढ़ाँचा संघीय है। जहाँ पर जाति और राजनीति के बीच का संबंध विभिन्न स्तरों पर देखा जाता है। विशेषकर स्थानीय संस्थाओं, विधान सभा एवं लोकसभा के स्तर पर।

12.3 जाति राजनीति के मुद्देः उदाहरण

इस खंड में आप जाति एवं राजनीति से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण उदाहरणों के बारे में अध्ययन करेंगे। ये मुद्दे हैंः- आरक्षण, जाति-आधारित हिंसा, एवं अन्य मुद्दे जैसे - सांस्कृतिक एवं वितरित न्याय।

12.3.1 आरक्षण

इकाई संख्या 13 में, आप आरक्षण के प्रावधानों के बारे में अध्ययन करेंगे। आरक्षण एक प्रकार का सहारा है जो कि सरकारी नौकरियों में कमजोर वर्गों को दिया जाता है ताकि सभी प्रकार के संस्थानों में उनका प्रतिनिधित्व भी हो सके। इन कमजोर वर्गों में एस.सी., एस.टी., ओ.बी.सी., एवं महिलाऐं तथा अन्य आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग शामिल है।

यह इकाई आरक्षण के राजनैतिक आयाम पर केंद्रित होगी। केवल जाति के कई हाषिये पर आधारित समूहों में से एक भारत में अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़ें वर्गों से संबंधित जाति समूह को सार्वजनिक संस्थानों में आरक्षण का हकदार बनाया गया है। अनुसूचित जाति को शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश, विद्यार्थी निकायों और स्थानीय प्रशासन में तथा अन्य पिछड़े वर्गों को शिक्षा संस्थानों में प्रवेश और पंचायतों एवं नगरपालिकाओं में भी आरक्षण का प्रावधान किया गया है। आरक्षण का मुद्दा जाति की राजनीति से जुड़ा है। जो जातियां आरक्षण से अपवर्जित है वे या तो आरक्षण की माँग करती हैं, या आरक्षण के लिये हकदार वर्ग की कुछ

जातियों को आरक्षण से बाहर रखने की माँग करती है। आरक्षण के लिये हकदार जातियां आरक्षण के लिये, प्रावधान बनाये रखना चाहती हैं। अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़े वर्गों जैसे विभिन्न जातियों में सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक उपलब्धियों के विभिन्न स्तर है, इसलिये उनमें से कुछ जातियों का मानना है कि उन्होंने आरक्षण की नीतियों से लाभ नहीं उठाया है। उनका तर्क है कि आरक्षण का लाभ उन्हीं लोगों को मिला है जो समाज के अभिजात्य वर्ग से हैं। उदाहरण के लिये उत्तर प्रदेश में अति पिछड़ा वर्ग यह माँग कर रहा है कि आरक्षण के कोटे को उप-विभाजित किया जाना चाहिये ताकि आरक्षण का लाभ उन्हें भी मिल सके। अन्य वर्गों में उसकी तुलना में इस वर्ग का बहुत कम हिस्सा आरक्षण का लाभ उठाता है। इस संदर्भ में, कुछ हिंदी राज्यों के अति पिछड़े वर्ग ने कयूरी ठाकुर फार्मूले के आधार पर कोटे के उप-विभाजन की माँग की है। जैसा कि आप इकाई 13 में पढ़ेंगे, इस फार्मूला का नाम बिहार के मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर के नाम पर रखा गया है, जिन्होंने ओ. बी.सी. कोटे को उप-विभाजित किया था ताकि आरक्षण का लाभ अति पिछड़े वर्गों को भी मिल सके। यहाँ तक कि कृषक समुदाय जैसा कि जाट ने राजस्थान में एवं हरियाणा में, महाराष्ट्र में मराठा एवं गुजरात में पटेल समुदाय ने पिछड़े वर्ग में शामिल करने के लिये आंदोलन चलाया था। राजस्थान में जाटों के आंदोलन के चलते, दिल्ली एवं यू.पी. की बी. जे.पी. सरकार, तथा राजस्थान की काँग्रेस सरकार ने जाटों को अन्य पिछड़ा वर्ग सूची में अपने-अपने राज्यों में शामिल कर लिया था। आरक्षण से संबंधित दोनों समूह चाहे पक्ष हो या विपक्ष दोनों ने अपने-अपने तर्क प्रस्तुत किये थे। जहाँ तक विपक्ष का सवाल है उनका तर्क यह था कि आरक्षण का आधार केवल मेरिट एवं आर्थिक स्थिति होनी चाहिये। इसका आधार जाति नहीं होना चाहिए। क्योंकि इससे मेरिट एवं कुषलता प्रभावित होती है। कहीं-कहीं पर यह तर्क राजनीतिक राजनीतिक कारणों से दिया जाता है। वहीं दूसरी ओर आरक्षण के समर्थकों का मानना है कि समाज में अभी भी जातिगत भेदभाव कायम है और मेरिट का आधार सामाजिक असमानता है और पिछड़े वर्ग आर्थिक एवं सामाजिक रूप से काफी कमजोर भी हैं, इसलिये इन समुदायों के लिये संविधान में आरक्षण का प्रावधान दिया गया है। इनकी सामाजिक स्थिति में सुधार से ये वर्ग आगे की श्रेणी में आ सकते है। इसलिए सांविधानिक तौर पर इन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग का लाभ मिलना चाहिये।

आरक्षण के समर्थकों और विरोधियों के बीच कई बार मतभेदों ने आपसी टकराव एवं आंदोलन पैदा किये। ये आंदोलन प्रायः जनता के समर्थन, विरोध या सार्वजनिक संपत्ति के विनाष के बीच हुए झगड़ों से उग्र रूप धारण कर लेते हैं। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं। 1990 में मंडल आयोग की रिपोर्ट के कार्यान्वयन के विरूद्ध आंदोलन जिसने केन्द्रिय सरकार के संस्थानों में नौकरियों में अन्य पिछड़े वर्गों के आरक्षण देने का सुझाव दिया था। 1981 और 1985 में गुजरात में तथा 1970 के दशक में बिहार में आरक्षण विरोधी आंदोलन विवादास्पद मुद्दा बन गया था। मंडल आयोग की रिपोर्ट के विरोध में हुए आंदोलन ने उत्तर भारत के अनेक राज्यों, विशेषकर दिल्ली, उत्तर-प्रदेश, राजस्थान और बिहार को प्रभावित किया। इस आंदोलन में दिल्ली विश्वविद्यालय का एक छात्र राजीव गोस्वामी ने आत्म-दाह कर लिया था। जोया हसन ने अपनी पुस्तक ''क्नेस्ट फोर पॉवर'' में आंदोलनों और काँग्रेस के वाद की राजनीति के बारे में बताया है कि मंडल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने या उसके विरोध में कैसे विभिन्न जातियों ने आंदोलन किया।

घनश्याम शाह (1987) और निकिता सूद (2012) के अध्ययनों ने 1981 और 1985 में हुए आरक्षण के संबंध में गुजरात में हुए आंदोलनों की चर्चा की है। 1981 और 1985 के दौरान गुजरात में आरक्षण उन जातियों के बीच मतभेदों का एक साधन बन गया जिनके आरक्षण से लाभ होने की आशा थी तथा जो आरक्षण के लाभ से वंचित थे। गुजरात में आरक्षण की राजनीति की राजनैतिक पृष्ठभूमि थी। 1972 में इंदिरा गाँधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस की

सरकार ने न्यायमूर्ति बक्षी की अध्यक्षता में सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लोगों की पहचान करने और उन्हें आरक्षण देने के लिये आयोग का गठन किया था।

बक्षी आयोग की नियुक्ति काँग्रेस द्वारा क्षत्रियों को पिछड़ा मानने के वायदे को पूरा करने की दिशा में की गयी थी। क्षत्रियों में विभिन्न जातियाँ जैसे राजपूत, भील, अर्ध-आदिवासी, परिया तथा कोली (कोठारी, 1970) आदि शामिल थीं। वस्तुतः 1961 के दशक में काँग्रेस को विपक्षी दलों ने चुनौती दी थी। 1967 और 1969 के चुनावों में अनेक क्षत्रियों ने जो परंपरागत रूप से काँग्रेस के समर्थक थे, विपक्षी स्वतंत्र पार्टी का समर्थन किया था। इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाली काँग्रेस ने क्षत्रियों को 'पिछड़ा वर्ग' के रूप में मान्यता देकर चुनाव जीतने की कोशिश की थी। पिछड़े वर्ग के रूप में मान्यता क्षत्रियों की पुरानी माँग थी जो उन्होंने प्रथम पिछड़े वर्ग के आयोग से पहले 1954-55 में की थी। बक्षी आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1976 में प्रस्तुत की और उनकी सिफारिशों को 1978 में जनता पार्टी की सरकार ने स्वीकार किया था जो काँग्रेस के स्थान पर बनी थी। बक्षी आयोग ने 82 जातियों को पिछड़ी जातियों के रूप में पहचान की थी। इनमें से 62 जातियाँ कोलियों के विभिन्न समूहों से थी। इस आयोग की महत्वपूर्ण सिफारिशों में से कुछ इस प्रकार हैं:- 82 पिछड़ी जातियों को मेडिकल एवं इंजनियरिंग कॉलेजों में 10 प्रतिशत आरक्षण दिया जाना चाहिए, तथा राज्य सरकार की नौकरियों में III तथा IV श्रेणियों को 10 प्रतिशत आरक्षण तथा I तथा II श्रेणियों में 5 प्रतिशत नौकरियों को सुरक्षित रखा जाए।

क्योंकि बक्षी आयोग द्वारा पिछड़ों के रूप में पहचानी जाने वाली जातियाँ कोली जाति के उप-समूह अधिक थे, आरक्षण का सबसे अधिक लाभ उनको मिलने की संभावना थीं। गुजरात क्षत्रिय सभा और उच्च जातियों ने बक्षी आयोग में की सिफारिशों का विरोध किया था। बक्षी आयोग ने जिन जातियों को पिछड़ा नहीं माना था, उनकी माँग थी कि उन्हें भी पिछड़ा माना जाये, क्योंकि उनकी आर्थिक स्थिति और सामाजिक स्थिति भी निम्न थी। इसकी प्रतिक्रिया में, काँग्रेस ने 1981 में माधव सिंह सोलंकी की सरकार ने राणे आयोग का गठन किया था ताकि यह पता लगाया जा सके कि अन्य पिछड़े वर्गों में से कोई सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ी जाति, पिछड़े वर्ग की परिभाषा से बाहर तो नहीं रह गयी। राणे आयोग ने 1983 में अपनी रिपोर्ट पेश की थी। इसने पिछड़े दल की पहचान के मापदंड के रूप में जाति को अस्वीकार कर दिया तथा उसके स्थान पर आर्थिक मानदण्ड या व्यवसाय को अपनाया। इस बीच काँग्रेस के नेताओं के बीच संघर्ष हुआ। विशेषकर माधव सिंह सोलंकी और जीनाभाई दाराजी के बीच। ये दोनों अपनी पकड़ काँग्रेस में करना चाहते थे और पिछड़ों का समर्थन प्राप्त करना चाहते थे। दाराजी से निबटने के लिये माधव सिंह सोलंकी ने राणे आयोग द्वारा सुझाये गये आर्थिक मानदण्ड को दरकिनार करते हुए 1985 में ओ.बी.सी. कोटे को 10 से बढ़ाकर 28 प्रतिशत कर दिया था। ऐसा उन्होंने मार्च 1985 में होने वाले विधान सभा चुनावों से ठीक दो महिने पूर्व ही किया था।

ऐसे राजनीतिक संदर्भ में, अहमदाबाद में, बी.जे. मेडिकल कॉलेज के छात्रों ने मैथोलेजी विभाग में अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिये आरक्षित सीटों के खिलाफ आंदोलन शुरू किया था। इस कॉलेज के कुछ विद्यार्थियों ने नवंबर 1979 में गुजरात उच्च न्यायालय में, रोस्टर प्रणाली भार-प्रेशण और आरक्षित सीटों के अदल-बदल के मामले में एक हलफनामा दाखिल किया था। विद्यार्थियों को इस मामले में न्यायालय से पराजय मिली और वो केस हार गये। इसके बाद छात्रों ने अहमदाबाद, बड़ोदरा, जामनगर और सूरत जैसे विभिन्न शहरों में आरक्षण को समाप्त करने की माँग को लेकर आंदोलन शुरू किया था। दलित पेंथर ने इसका उत्तर यह कह कर यदि आरक्षण समाप्त करने की माँग स्वीकार कर ली गयी तो वो भी इसके खिलाफ प्रति-आंदोलन शुरू करेगा। लेकिन राज्य सरकार ने फैसला

किया कि एस.सी. और एस.टी. की सीटों के आरक्षण को औषधि की स्नाकोत्तर अध्ययनों में आगे (कैरी फावर्ड) नहीं ले जाया जाएगा और मुख्यमंत्री ने कहा कि औषधिक के अध्ययन और जैसे शिक्षण में मैरिट में (योग्यता) की पूरी तरह उपेक्षा नहीं की जायेगी। खेड़ा, अहमदाबाद और मेहताणा जिले के कुछ गाँवों में दलित बस्ती को आग लगा दी गयी थी। गुजरात में 1985 में एक और आरक्षण विरोधी आंदोलन हुआ। माधव सिंह सोलंकी सरकार ने 1985 में ओ.बी.सी. के लिए 10 से बढ़ाकर 28 प्रतिशत आरक्षण कर दिया था जो कि राणे आयोग के आर्थिक मानदंड को खारिज करता हैं। पहले के आरक्षण विरोधी आंदोलन की तरह, यह आंदोलन सौराष्ट्र के एक मेडिकल कॉलेज मोरबी कॉलेज से शुरू हुआ था। छात्रों ने हड़ताल करने और कक्षाओं को बहिस्कार करने का सहारा लिया। अहमदाबाद में छात्रों ने गुजरात शिक्षा सुधार शिक्षा समिति का गठन किया जिसने गुजरात बंद की घोषणा की। गुजरात उच्च न्यायालय ने ओ.बी.सी. कोटे में वृद्धि पर रोक का आदेश पारित किया और सरकार ने यह सुझाव देने के लिये एक समिती का गठन किया कि कोटे को बढ़ाया जाये या नहीं। और उसने घोषणा की कि वह जब तक कोटे में वृद्धि नहीं करेगी जब तक कि समिती अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत न कर दे। अंत में आरक्षण विरोधी माँग को स्वीकार कर लिया गया। शाह के अनुसार गुजरात में आरक्षण की राजनीति में उच्च मध्य वर्ग तथा निम्न जाति के मध्यम वर्गों के लोगों के बीच संघर्ष की झलक मिलती थी। आरक्षण को अभिजात राजनीतिक वर्ग के लोगों द्वारा मत प्राप्त करने और उपेक्षित समूहों की आकांक्षाओं को संतुष्ट के लिये लागू किया गया था। आरक्षण ने उच्च जातियों में असुरक्षा की भावना पैदा की। यह भावना उनकी पारंपरिक सामाजिक स्थिति में गिरावट तथा मध्यम वर्ग में निम्न वर्ग के लोगों की भर्ती के कारण तीव्र हो गई थी। आरक्षण विरोधियों को पूंजीपतियों, प्रशासन और मीडिया का भी समर्थन हासिल था। इसी तरह, बिहार में 1978 में कर्पूरी ठाकुर की सरकार द्वारा मुंगेरी लाल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के पश्चात् आरक्षण के खिलाफ एवं इसके पक्ष में आंदोलन हुए। कर्पूरी ठाकुर फार्मूला ने अति पिछड़ी जातियों को ओ.बी.सी. कोटे में आरक्षण दिया था।

13.3.2 हिंसा

जाति-आधारित हिंसा का प्रमुख कारण जातिगत भेदभाव होता है। इसमें महिलाओं के साथ शोषण, आर्थिक शोषण, पानी और अंबडेकर जयंती समारोह को लेकर झगड़ा, चुनाव संबंधित हिंसा इत्यादि कारण भी शामिल हैं। भारत के विभिन्न राज्यों में उदाहरण है जहाँ, निम्न जातियां असमान सामाजिक स्थिति और आर्थिक असमानता के कारण जातिय हिंसा की शिकार हो जाती है। ओलिवर मेंडेलासन और मारिका, तथा डाग-इरिक-वर्ग, दलित उत्पीड़न और संवैधानिक लोकतंत्र में बिहार और आंध्रप्रदेश में जातिय हिंसा के बारे में चर्चा करते हैं। 1971 और 1980 के दशकों के उत्तर्रार्ध में बिहार में विभिन्न जाति संगठनों का उद्भव हुआ था। ये अपने आप में जातिगत झगड़ों में फंसे हुए थे जो अक्सर हिंसा पर आधारित होते थे। बिहार में कुर्मी या यादव, तथा दलितों और दलित और उच्च जातियों जैसे भूमिहारों के बीच भूमि के स्वामित्व को लेकर हिंसा होती रहती थी। ऐसे विवादों में से एक विवाद ऐसा था जो कि राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित रहा वह था। यह फरवरी 1980 में पटना जिसे के पिपरा गाँव में हुआ था। इस विवाद में दलितों और कुर्मियों के बीच भूमि के स्वामित्व को लेकर झगड़ा हुआ था जिसमें दो दलित परिवारों की हत्या कर दी गई तथा उनकी लाषों एवं घरों को जला दिया गया था। इस घटना से पूर्व पास ही के गाँव में दिसंबर 1979 में दो कुर्मी जमींदारों की हत्या कर दी गई थी। बिहार में कुछ अन्य उदाहरण भी हैं जहाँ दलितों की हत्या जाति हिंसा या जमीन विवाद में कर दी जाती है। जैसे 1977 में बेलची हत्याकांड, 1978 में बिश्रामपुर कांड, 1986 में जहानाबाद में अरवल कांड शामिल हैं।

आंध्रप्रदेश में भी जातिगत हिंसा में दलित शिकार हुए हैं। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार से हैं। 1968 में कृश्णा जिले में कांची-कचरेला गाँव, 1985 में कर्मचेडू गाँव तथा 1991 में गुंटूर जिले का सुंदर गाँव के उदाहरण शामिल हैं। दलित प्रभावशाली जाति के लोगों के शिकार हुए थे। कर्मचेडू घटना के बर्ग (2002) के अनुसार दो कारण है :- दलित समाज का आगे बढ़ना और सत्ता पर भू स्वामियों का कब्जा हो जाना, विशेषकर कामा समुदाया था। कर्मचेडू कांड की जड़े विवाद में हैः 17 जुलाई 1985 को दलित (माडिगा) लड़के ने एक काम्मा लड़के को डाँटा क्योंकि उसने अपनी भैंस को उस तालाब में नहलाया जिससे माडिगा लोग पानी लेते थे। इसके विरोध में काम्मा लड़के ने दलित लड़के को और एक माडिगा बुजुर्ग औरत को पीटा था। इससे प्रतिरोध की आग भड़की और माडिगा निवासियों की बस्ती पर काम्मा जाति के लोगों द्वारा आक्रमण हुआ। दलितों के घरों में आग लगा दी गयी जिसमें छः लोगों की मौत हो गयी थी। कर्मचेडू हत्याकांड ने आंध्रप्रदेश में दलित आंदोलन की गति को प्रभावित किया। और इस हत्याकांड की प्रतिक्रिया के तौर पर आंध्रप्रदेश में दलित महासभा का गठन हुआ। इस घटना का आंध्रप्रदेश में राजनीतिक दलों के लिये भी महत्व था। विपक्षी दल काँग्रेस ने रेखांकित किया कि गाँव के कुछ काम्मा परिवारों का मुख्यमंत्री एवं टी.डी.पी. प्रमुख एन.टी. रामा राव के साथ संबंध था।

12.3.3 जातिवादी प्रतीक एवं राजनीति

जातिवादी प्रतीक, ऐतिहासिक मिथक, जाति चिन्ह जाति लामबंदीकरण के महत्वपूर्ण औजार हैं। इस प्रकार के प्रतीकों को मान्यता देने से इन प्रतीकों से संबंधित जातियों में आत्मविश्वास की भावना पैदा होती है। 1995 से 2012 के बीच विभिन्न समय में उत्तर प्रदेश में मायावती प्रमुख की अगुवाई में आने वाली चार सरकारों ने जाति चिन्हों को महत्व दिया था और उसके दल बी.एस.पी. इन चिन्हों को राजनीति में प्रयोग करने के महत्वपूर्ण उदाहरण है। मायावती सरकार ने उत्तर प्रदेश के अनेक गाँवों को अंबडेकर गाँव की संज्ञा दी थी इन गाँवों में दलितों की संख्या काफी अधिक हैं। उन्होंने गाँवों में दलितों के कल्याण के लिए कई योजनाऐं शुरू की थी। इन गाँवों के विकास तथा वहाँ पर दलित कल्याण के लिए मायावती सरकार ने नीतियां लागू की थी। उनकी सरकार लखनऊ ने अंबडेकर पार्क तथा अनेक स्मारकों का निर्माण किया। इनका नामकरण उपेक्षित जातियों से संबंधित प्रतीकों के आधार पर किया गया था। सरकार ने कई नये जिलों का निर्माण किया तथा पुराने जिलों के नामों को नए नाम दिए।

अभ्यास प्रश्न 1

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) भारत में आरक्षण चुनावी राजनीति का महत्वपूर्ण एजेंडा है? व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में जाति आधारित हिंसा की प्रकृति क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.4 जाति और चुनावी राजनीति

जाति और चुनावी राजनीति एक दूसरे से संबंधित है। इकाई 4 में आपने जाति और चुनावी राजनीति के एक महत्वपूर्ण पहलू के बारे में पढ़ा है। इस उपखंड में आप चुनावी राजनीति में जाति के अन्य पहलुओं के बारे में पढ़ोगे। इन पहलुओं में निर्वाचित प्रतिनिधियों की जातिय पृष्ठभूमि, चुनावी राजनीति में जातियों को लामबंद करने की पार्टी रणनीतियां और राजनीतिक दलों ने समर्थन और जातियों के बीच संबंध। 1950 के दशक से अनेक विद्धानों ने चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका का अध्ययन किया है। भारत में चुनाव अध्ययन करने की प्रमुख भूमिका दिल्ली में स्थित सी.एस.डी. एस के नाम से प्रसिद्ध है। अनेक अध्ययनों में यह पाया गया है कि जाति और निर्वाचन राजनीति के बीच संबंध में 1952 से हुए प्रथम आम चुनावों के बाद से भारी परिवर्तन हुए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ दशकों तक निर्वाचन राजनीति पर देश के विभिन्न क्षेत्रों में पारंपरिक रूप से प्रभावी जातियों का ही वर्चस्व रहा है।

आधिकारिक दृष्टि से कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति हो उसे मत देने का अधिकार तो था लेकिन कई अवसरों पर प्रबल जाति के लोगों ने दूसरी छोटी जातियों को मत देने नहीं देते थे। इसे हम ''बूथ कैप्चरिंग'' के नाम से भी जानते है। 1950 से 1960 के दशकों में देश के अधिकांश भागों में काँग्रेस को अनेक जातियों का समर्थन प्राप्त हुआ था। इसका नेतृत्व भी उच्च या मध्यम वर्ग की जातियों द्वारा किया गया था तथा सामाजिक सोपानक्रम के अनुसार जातियों द्वारा भी चुनावों में इसका समर्थन किया गया था। पॉल आर ब्रास काँग्रेस को जातियों के गठबंधन के आधार वाला दल मानते हैं। लेकिन 1970 से काँग्रेस देश में अपनी वर्चस्वता नहीं रख सकी। 1967 और 1969 में कई राज्यों में काँग्रेस की हार का संकेत मिला। काँग्रेस के पतन के साथ-साथ कई राज्यों में राज्य स्तर के नेताओं का उदय हुआ जिन्होंने राज्य स्तर के दल बनाये और मध्यम जातियों के किसान वर्ग या समुदायों जैसे जाट, यादव या अन्य पिछड़े वर्गों को संगठित किया। उत्तर भारत में इन समूहों का मुख्य नेतृत्व चौधरी चरण सिंह ने किया। गैर कांग्रेसी नेताओं ने आपातकाल के बाद जनता पार्टी का गठन किया था। काँग्रेस सरकारों की तुलना में उत्तर प्रदेश और बिहार में इसकी सरकारों ने पिछड़े और खेतिहर समुदायों को अधिक प्रतिनिधित्व दिया कांग्रेस की सरकारों में उच्च जातियों को अधिक प्रतिनिधित्व दिया था।

टिप्पणी: क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका का संक्षिप्त विश्लेषण कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.5 सारांश

जाति और राजनीति एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। ये एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। जाति की राष्ट्रीय, राज्य एवं स्थानीय चुनावों में भूमिका होती है। राजनीतिक दलों और संगठनों का गठन कई कारकों से होता है, जिनमें जाति के एक प्रमुख कारक होती हैं, खासकर उत्तरी भारत के राजनीतिक दलों में। केवल पार्टी का गठन ही नहीं बल्कि उम्मीदवारों का चयन मुख्य रूप से किसी क्षेत्र के जातिय ढाँचे पर आधारित है। आरक्षण नीति ने निर्वाचन राजनीति में जाति की भूमिका का विस्तार किया है और इसने अनुसूचित जाति और पिछड़े वर्गों की राजनीतिक भागीदारी भी प्रदान की है। आरक्षण से पिछड़े समाज के कई नेताओं की राजनीतिक भागीदारी में और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई है। फिर भी जाति आधारित हिंसा का आरक्षण पर सबसे बुरा प्रभाव पड़ा है। राजनीतिक दल एवं नेता इसे वोट प्राप्त करने का एक उपयुक्त साधन मानते हैं। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होने के बावजूद जाति भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा है और इसलिये राजनीति में जाति एक महत्वपूर्ण कारक रही है।

12.6 संदर्भ

ब्लेयर, हैरी (1980, ''राइजिंग कुलक्स एण्ड बैकवार्ड क्लासेज इन बिहारः सोशल चेंज इन द् लेट 1970, *ई.पी.डब्लयू.*, जनवरी 12

पॉल, आर, ब्रास (1985), *कास्ट, फेक्शन एन्ड पार्टी इन इडिंयन पोलिटिक्स.* नई-दिल्ली, चाणक्य प्रकाशन।

बर्ग,डाग-ऐरिक (2020), *डायनैमिक्स ऑफ कास्ट एन्ड लॉः दलित, ओप्रेसन एन्ड कंस्टीट्यूशनल डेमोक्रेसी,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिजज।

हसन, जोया, (1998), *क्वेस्ट फोर पॉवरः अपोजीशनल एजीटेशन एन्ड पोस्ट-कॉंग्रेस पोलिटिक्स इन उत्तर-प्रदेश,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

जैफरलो, क्रिस्टोफ (2019), क्लास एन्ड कास्ट इन द 2019 इंडियन इलैक्षन - व्हाई हैव सो मैनी पुअर स्टार्टेड वोटिंग फोर मोदी, *स्टडीज इन इंडियन पोलिटिक्स,* 7 (2) : 149-160।

जैफरलो क्रिस्टोफ एन्ड संजय कुमार (2009), *राइज ऑफ प्लेबियंस? द चेंजिंग फेस ऑफ इंडियन लेजिसलेटिव असैंबलिज.* न्यू-दिल्ली, राउटलेज।

जेफरलो क्रिस्टोफ (2003), *इंडियाज साइलैंट रिवेल्यूशनः द राइज ऑफ लो कास्टस इन नार्थ इंडियन पोलिटिक्स,* दिल्ली।

कोठारी, रजनी (1970), *कास्ट इन इंडियन पोलिटिक्स.* न्यू दिल्ली, ओरियंट लोंगमैन लिमिटेड।

मेंडलसोन, ओलिवर एन्ड विकजिनी (1998), *द अटंपेबिल्सः सबोर्डिनेशन, पोवर्टी एन्ड द स्टेट इन मॉडर्न इंडिया,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू-दिल्ली।

पाई, सुधा (2002) *दलित असर्सन एन्ड द अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशनः द बहुजन समाज पार्टी इन उत्तर प्रदेश,* सेज प्रकाशन, नई-दिल्ली।

शाह, घनस्याम, (1785), 'कास्ट, क्लास एन्ड रिजर्बेशन': ई.पी.डब्ल्यू, वोल्यूम-2, न.3।

शाह, घनस्याम, (1987), मिडिल क्लास पोलिटिक्स, ए केस ऑफ एंटी-रिजर्वेशन एजीटेशन इन गुजरात, ई.पी.डब्ल्यू., वार्षिक नंबर।

सूद, निकिता (2012), *लिबरेलाइजेशन, हिन्दू नेशनेलिज्म एन्ड द स्टेटः एं बायोग्राफी ऑफ गुजरात,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू-दिल्ली।

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) जाति राजनीति एवं आरक्षण का संबंध - सभी जातियों की आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति भिन्न-भिन्न है, भारत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, एवं ओ.बी.सी. वर्गों के लिये आरक्षण का प्रावधान किया गया है। इसमें सार्वजनिक शैक्षिक संस्थानों में नौकरियों, प्रवेश के लिये आरक्षण का प्रावधान किया गया है तथा विधायी निकायों में भी आरक्षण का प्रावधान किया गया है। आक्षण भारतीय राजनीति में एक विवादास्पद मुद्दा रहा है। जिन जातियों को आरक्षण नहीं दिया गया है वो जाति आधारित आरक्षण को खत्म करने की बात करती हैं और योग्यता के आधार पर आरक्षण दिये जाने की बात करती हैं। जो लोग आरक्षण का समर्थक करते है, उनका मानना है कि योग्यता सामाजिक, आर्थिक यथार्थ पर आधारित है और इसलिये हासिये के वर्गों को सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिये आरक्षण की बेहद सख्त जरूरत है।

2) जाति आधारित हिंसा का संबंध जाति आधारित भेदभाव से है, जिसमें महिलाओं का शोषण, आर्थिक शोषण, जल विवाद, तथा अंबेडकर जयंती समारोह पर विवाद एवं चुनावी हिंसा शामिल है। कुछ राज्यों में निम्न जातियों के लोगों को सामाजिक एवं आर्थिक असमानता का शिकार पाया जाता है। जाति आधारित हिंसा में दलितों पर शारीरिक हमले किये जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1) जाति एवं चुनावी राजनीति एक दूसरे से जुड़ी हुई है। राजनीतिक दल विभिन्न जातियों को लामबंद करके के लिए रणनीतियां बनाती है। वे मुद्दों को उठाती है, विशेषकर उनके लोगों को चुनाव में टिकिट देकर ताकि वे उनका समर्थन प्राप्त कर सके। बहुजन समाज पार्टी (बी.एस.पी.) एवं समाजवादी पार्टी (एस.पी.) प्रमुख रूप से दलित एवं पिछड़े वर्गों की पार्टियां है। लेकिन किसी भी पार्टी के प्रत्याशी को जीतने के लिये विभिन्न जातियों के गठबंधन की जरूरत पड़ती है।